❐ प्रो० सागरमल जैन

अहिंसा की सार्वभौमिकता

अहिंसा की अवधारणा के विकास का इतिहास मानवीय सभ्यता और संस्कृति के विकास के इतिहास का सहभागी रहा है। जिस देश, समाज एवं संस्कृति में मानवीय गुणों का जितना विकास हुआ, उसी अनुपात में उसमें अहिंसा की अवधारणा का विकास हुआ है। चाहे कोई भी धर्म, समाज और संस्कृति हो, उसमें व्यक्त या अव्यक्त रूप में अहिंसा की अवधारणा अवश्य ही पाई जाती है। मानव समाज में यह अहिंसक चेतना स्वजाति एवं स्वधर्मी से प्रारम्भ होकर समग्र मानव समाज, सम्पूर्ण प्राणी जगत और वैश्विक पर्यावरण के संरक्षण तक विकसित हुई है। यही कारण है कि विश्व में जो भी प्रमुख धर्म और धर्म प्रवर्तक आये उन्होंने किसी न किसी रूप में अहिंसा का संदेश अवश्य दिया है। अहिंसा की अवधारणा जीवन के विविध रूपों के प्रति सम्मान की भावना और सह-अस्तित्व की वृत्ति पर खड़ी हुई है।

हिन्दूधर्म में अहिंसा

वैदिक ऋषियों ने अहिंसा के इसी सहयोग और सह-अस्तित्व के पक्ष को मुखरित करते हुए यह उद्घोष किया था – **'संगच्छध्वं, संवदध्वं सं वो मनासि जानताम्, समानो मंत्र, समिति समानी'** अर्थात् हमारी गति, हमारे वचन, हमारे विचार, हमारा चिन्तन और हमारी कार्यशैली समरूप हो, सहभागी हो। मात्र यही नहीं ऋग्वेद (६.७५.१४) में कहा गया कि **'पुमान पुमांस परिपातु विश्वतः'** अर्थात् व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वे परस्पर एक दूसरे की रक्षा करें। ऋग्वेद का यह स्वर यजुर्वेद में और अधिक विकसित हुआ। उसमें कहा गया –

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे ।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे ।। – यजुर्वेद ३६.१८

अर्थात् मैं सभी प्राणियों को मित्रवत् देखूँ और वे भी मुझे मित्रवत् देखें 'सत्वेषु मैत्री' का यजुर्वेद का यह उद्घोष वैदिक चिन्तन में अहिंसक भावना का प्रबल प्रमाण है।

उपनिषद् काल में यह अहिंसक चेतना आध्यात्मिक जीवन दृष्टि के आधार पर प्रतिष्ठित हुई। छान्दोग्योपनिषद् (३/१७/४) मे कहा गया–

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता तस्य दक्षिणाः ।

अर्थात् इस आत्म-यज्ञ की दक्षिणा तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्य वचन है। इसी छान्दोग्योपनिषद् (८.१५.१) में स्पष्टतः यह कहा गया है–

...अहिंसन् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं .. ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ।

अर्थात् धर्म तीर्थ की आज्ञा से अन्यत्र प्राणियों की हिंसा नहीं करता हुआ यह निश्चय ही ब्रह्मलोक (मोक्ष) को प्राप्त होता है, उसका पुनरागमन नहीं होता है, पुनरागमन नहीं होता है।

आत्मोपासना और मोक्षमार्ग के रूप में अहिंसा की यह प्रतिष्ठा औपनिषदिक ऋषियों की अहिंसक चेतना का सर्वोत्तम प्रमाण है।

वेदों और उपनिषदों के पश्चात् स्मृतियों का क्रम आता है। स्मृतियों में मनुस्मृति प्राचीन मानी जाती है। उसमें भी ऐसे अनेक संदर्भ हैं, जो अहिंसा के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। यहाँ हम उसके कुछ सन्दर्भ प्रस्तुत कर रहे हैं–

अहिंसयैव भूतानां कार्य श्रेयोऽनुशासनम् ।–मनुस्मृति २/१५९

अर्थात् प्राणियों के प्रति अहिंसक आचरण ही श्रेयस्कर अनुशासन है।

अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते । –मनुस्मृति ६/६०

अर्थात् प्राणियों के प्रति अहिंसा के भाव से व्यक्ति अमृतपद (मोक्ष) को प्राप्त करता है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चतुर्वण्येऽब्रवीन्मनुः ।।–मनुस्मृति १०/६३

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, पवित्रता और इन्द्रिय निग्रह– ये मनु के द्वारा चारों ही वर्णों के लिये सामान्य धर्म कहे गये हैं।

हिन्दू परम्परा की दृष्टि से स्मृतियों के पश्चात् रामायण, महाभारत और पुराणों का काल माना जाता है। महाभारत, गीता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और पुराणों में ऐसे सैकड़ों सन्दर्भ हैं, जो भारतीय मनीषियों की अहिंसक चेतना के महत्वपूर्ण साक्ष्य माने जा सकते हैं–

अहिंसा सकलोधर्मो हिंसाधर्मस्तथाहित ।

– महाभारत शां.पर्व अध्याय २७२/३०

अर्थात् अहिंसा को सम्पूर्ण धर्म और हिंसा को अधर्म कहा गया है।

न भूतानामहिंसाया ज्यायान् धर्मोस्तथाहित ।

– महाभारत शा. पर्व २९२/३०

अर्थात् प्राणीमात्र के प्रति अहिंसा की भावना से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है।

अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परो दम: ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तप: ।।
अहिंसा परमोयज्ञस्तथाहिंसा परं फलम् ।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ।।

– महाभारत अनुशासन पर्व ११६/२८-२९

अर्थात् अहिंसा सर्वश्रेष्ठधर्म है, वही उत्तम इन्द्रिय निग्रह है। अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ दान है, वही उत्तम तप है। अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है और वही परमोपलब्धि है। अहिंसा, परममित्र है, वही परमसुख है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक एवं हिन्दूधर्म में ऐसे अगणित संदर्भ हैं, जो अहिंसा की महत्ता को स्थापित करते हैं।

बौद्ध धर्म में अहिंसा

मात्र यही नहीं भारतीय श्रमण परम्परा के प्रतिनिधिरूप जैन एवं बौद्ध धर्म भी अहिंसा के सर्वाधिक हिमायती रहे हैं। बौद्धधर्म के पंचशीलों, जैनधर्म के पंच महाव्रतों और योगदर्शन के पंचयमों में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया। धम्मपद में भगवान बुद्ध ने कहा है–

न तेन आरियो होति येन पाणानि हिंसति ।
अहिंसा सव्वपाणानं अरियोति पवुच्चति ।।

– धम्मपद धम्मट्ठवग्ग १५

अर्थात् जो प्राणियों की हिंसा करता है, वह आर्य (सभ्य) नहीं होता, अपितु जो सर्व प्राणियों के प्रति अहिंसक होता है, वही आर्य कहा जाता है।

अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता ।
ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गंत्वा न सोचरे ।

– धम्मपद कोधवग्ग ५

अर्थात् जो मुनि काया से संवृत होकर सदैव अहिंसक होते हैं, वे उस अच्युत स्थान (निर्वाण) को प्राप्त करते हैं, जिसे प्राप्त करने के पश्चात् शोक नहीं रहता। धम्मपद में अन्यत्र कहा गया है–

निधाय दण्डं भूतेषु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ।।

अर्थात् जो त्रस एवं स्थावर प्राणियों को पीड़ा नहीं देता है, न उनका घात करता है और न उनकी हिंसा करता है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

इस प्रकार पिटक ग्रन्थों में ऐसे सैकड़ों बुद्धवचन हैं, जो बौद्ध धर्म में अहिंसा की अवधारणा को स्पष्ट करते हैं।

जैन धर्म में अहिंसा

जैनधर्म में अहिंसा को धर्म का सार तत्व कहा गया है। इस सम्बन्ध में आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, मूलाचार आदि अनेक ग्रन्थों में ऐसे हजारों उल्लेख हैं, जो जैनधर्म की अहिंसा प्रधान जीवन दृष्टि का सम्पोषण करते हैं। इस सम्बन्ध में आगे विस्तार से चर्चा की गई है। यहाँ हम मात्र दो तीन सन्दर्भ देकर अपने इस कथन की पुष्टि करेंगे। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है–

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।–दशवैकालिक १/१

अर्थात् अहिंसा, संयम और तप रूप धर्म ही सर्वश्रेष्ठ मंगल है।

सूत्रकृतांग में कहा गया है–

एयं खु णाणिणो सारं जं ण हिंसति कंचण ।
अहिंसा समयं चेव एतावंतं वियाणिया ।। –सूत्रकृतांग ११/१०

ज्ञानी होने का सार यही है कि किसी जीव की हिंसा नहीं करते। अहिंसा ही धर्म (सिद्धान्त) है– यह जानना चाहिये।

अन्यत्र कहा गया है–

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं निग्गंथा वज्जयंतिणं ।।

अर्थात् सभी सुख अनुकूल और दु:ख प्रतिकूल है। इसीलिए निर्ग्रन्थ प्राणी वध (हिंसा) का निषेध करते हैं।

सिक्खधर्म में अहिंसा

भारतीय मूल के अन्य धर्मों में सिक्खधर्म का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इस धर्म के धर्मग्रन्थ में प्रथम गुरू नानकदेवजी कहते हैं–

जे रत लग्गे कपडे जामा होए पलीत ।
जे रत पीवे मांसा तिन क्यों निर्मल चित्त ।।

अर्थात् यदि रक्त के लग जाने से वस्त्र अपवित्र हो जाता है, तो फिर जो मनुष्य मांस खाते हैं या रक्त पीते हैं, उनका चित्त कैसे निर्मल या पवित्र रहेगा?

अन्य धर्मों में अहिंसा

न केवल भारतीय मूल के धर्मों में अपितु भारतीयेतर यहूदी, ईसाई और इस्लाम धर्मों में भी अहिंसा के स्वर मुखर हुए हैं। यहूदी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खैर! लड़कियों की शिक्षा का प्रतिशत जो चाहे रहा हो, उनकी स्थिति निश्चित रूप से परिवर्तित है। वे लड़कों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर शिक्षित हो रही हैं और कहीं-कहीं तो उन्हें पीछे छोड़कर आगे निकल रही हैं। उनमें आत्मबोध का विकास हुआ है। प्रशिक्षित नारी ने व्यावसायिक योग्यताएँ अर्जित की हैं। उसने आर्थिक स्वतन्त्रता का सुख भोगा है। उसमें निर्णय लेने का साहस पैदा हुआ है। आत्मरक्षा के लिए जूडो-कराटे के शिक्षण ने निपुणतापूर्वक आक्रामक होने के तेवर भी पैदा किये हैं। सशक्तिकरण के दौर में संतुलित, दूरदर्शी एवं विवेकसम्पन्न बोध ही नारी-छवि को गरिमा प्रदान करेगा एवं शिक्षा के नये प्रतिमान स्थापित करने में सशक्त भूमिका निभायेगा।

शिष्टाचार में परिणत होते भ्रष्टाचार, बाजारवाद और आरक्षण के भँवर में फँसा विद्यार्थी दिग्भ्रमित है। राजनीति में उसका इस्तेमाल किया जा रहा है, उसे भागीदार नहीं बनाया जा रहा। वह डरा-डरा, सहमा-सहमा है, कभी एक दिशा में दौड़ रहा है तो कभी दूसरी दिशा में। एक के बाद एक प्रतिस्पर्धात्मक परीक्षाओं में बैठता, चारों तरफ हाथ-पाँव मारता अपने लिए स्थान सुरक्षित करना चाहता है। दो-तीन तरह के पाठ्यक्रमों (कोर्सेज़) का बोझ लेकर चलने के कारण एक के प्रति भी पूरी तरह समर्पित नहीं हो पाता एवं परीक्षाफल मनोनुकूल नहीं हो पाता। कोचिंग सेंटर एवं स्कूल-कॉलेज की दुहरी मार झेलते हुए विद्यार्थी की मानसिकता रुग्ण हो जाती है। कभी वह आक्रामक हो उठता है तो कभी दयनीय। कभी वह शिक्षक के अनुपस्थित होने पर कक्षाएँ न होने की शिकायत करता है तो कभी शिक्षक से गुहार लगाता है कि बिना पढ़ाये ही छोड़ दिया जाये। कभी पाठ्यपुस्तक न लाने पर विद्यार्थियों का ढीठ बने रहना और कभी किसी भी गल्ती पर लज्जित होने के बजाय पूरी कक्षा का ठहाके लगाना – यह आम दृश्य है। न जाने विद्यार्थी स्वयं पर हँसते हैं या शिक्षक पर। और कभी किसी शिक्षिका को देखकर 'लाल छड़ी मैदान खड़ी.....', 'ओ मनचली कहाँ चली.....' जैसे फिल्मी गीतों की कड़ियों के माध्यम से फिकरे कसते हुए वे अपने दुस्साहसी व्यक्तित्व का आतंक जमाते देखे जाते हैं। उच्च शिक्षा के बावजूद भी बेरोजगारी सुरसा की तरह मुँह बाये खड़ी रहती है और बहुत बार आतंकवाद की राह पर ले चलती है। किसी अखबार में एक खबर छपी थी कि भारतीय छात्रों को लुभाने के लिये ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों ने हाल ही में दिल्ली में मेले आयोजित किये हैं। इन मेलों का उद्देश्य है कि ब्रिटेन की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा और उसकी विविधता को भारतीय छात्रों के सामने रखना। ब्रिटेन के विश्वविद्यालय भारतीय छात्रों के मेहनती स्वभाव और अंग्रेजी पर उनकी पकड़ से बेहद प्रभावित हैं। मेलों के आयोजकों का मानना है कि देश की प्रतिभाओं पर आरक्षण की पड़ती मार ने उन्हें विदेशों की ओर भागने के लिए मजबूर किया है। वहाँ छात्र-छात्राओं को सब्ज़बाग नहीं दिखाये जाते बल्कि रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रदान की जाती है। वैश्वीकरण के दौर में प्रतिभा-पलायन का रोना बेमानी है।

कम्प्यूटर के उदय ने शिक्षा के क्षेत्र में हलचल मचा दी है। इस क्रांतिकारी घटना ने संपूर्ण विश्व को एक ग्राम में तब्दील कर दिया है। समय की रफ्तार के साथ चलने के लिए 'सरवाइवल ऑफ द फास्टेस्ट' की नीति ने चाहे-अनचाहे कम्प्यूटर-शिक्षण को अनिवार्य बना दिया है। नेटवर्क के प्रवेश ने शिक्षण-प्रशिक्षण की नई प्रणालियाँ ईजाद की हैं। यह सच है कि कम्प्यूटर घर बैठे अल्प समय और अल्प श्रम के माध्यम से असीम ज्ञान उपलब्ध करवा सकता है, पर इसके लिए मशीन के सामने बैठने की मानसिकता, व्यवस्था और स्थान की अनुकूलता की कवायद से गुजरना पड़ता है। सोये-बैठे – किसी भी स्थिति में पुस्तक की उपलब्धता और सुविधा का सुख अलग ही होता है। मनुष्य और मनुष्य के बीच कहे-अनकहे जो संवाद होता है वह मनुष्य और यंत्र के बीच संभव नहीं। इसी संदर्भ में मैं रमशे दवे का कथन उद्धृत करना चाहूँगी– ''स्लेट चाहे कम्प्यूटर के परदे में बदल जाए, किताबें इन्टरनेट और वेबसाइटों का रूप धारण कर लें और शिक्षक चाहे दूरदर्शन या प्रौद्योगिकी संसाधनों के एंकर्स में बदल जाएँ और मशीन, मशीन की पराकाष्ठा भले हो जाए, मगर द्रष्टा नहीं हो सकती। इसलिए मनुष्य की भूमिका दृष्टि और द्रष्टा की भूमिका है, विचार और ज्ञान की भूमिका है। इसलिए आशा की जा सकती है कि चाहे शिक्षा मनुष्य का भविष्य हो या न हो, मनुष्य शिक्षा का भविष्य अवश्य होगा (''इक्कीसवीं शती में शिक्षा का भविष्य''–सितम्बर २००१, वागर्थ)।''

शिक्षा बहुआयामी प्रक्रिया है। इसमें ज्ञान के साथ श्रम एवं शारीरिक स्वास्थ्य के साथ नैतिक उन्नयन का समन्वय आवश्यक है। जानकारी या सूचनात्मक ज्ञान को ही शिक्षा का पर्याय न समझकर, जीवन के लिए, जीवन के माध्यम से शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। क्या ये संदर्भ फिर गाँधी की ओर मुड़ने का संकेत नहीं देते?

वृन्दावन गार्डेन्स
९८, क्रिस्टोफर रोड, कोलकाता-७०० ०४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org